ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.18, NO.2, JULY-DEC,2023 /49

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

***विकास सिंह एवं **प्रो. अरुण कुमार मिश्र**

***शोधछात्र– आधुनिक इतिहास विभाग, डॉ.रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या**

****विभागाध्यक्ष–आधुनिक इतिहास विभाग, श्री गनपत सहाय पी.जी. कॉलेज, सुलतानपुर**

https://doi.org/10.61410/had.v18i2.143

शोध सारांश

पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीय जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के महान कार्यकर्ता के रूप में थे। वह एक प्रखर विचारक, संगठनकर्ता के रूप में अपनी ख्याति अर्जित की थी। वह एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने आजीवन अपनी ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा को महत्त्व दिया था। वह मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्रोत के रूप में आज भी याद किये जाते हैं। पं. दीनदयाल एक राष्ट्र नायक के रूप में आज भी हमारे बीच हमारा मागदर्शन करते हैं कि कैसे अपने राष्ट्र के प्रति आप योगदान कर सकते हैं। वह भारतीय संस्कृति का प्रतीक, अजातशत्रु एवं इतिहासपुरुष बनना था, अन्यथा भावनात्मक अनुभूतियों में ही उलझ कर रह जाते। बड़ी ही ईमानदारी के साथ दीनदयाल जी ने भारतीय राजनीति को राष्ट्रवाद के साथ जोड़कर देखा था। उनका विचार था कि हिन्दू कोई धर्म या सम्प्रदाय नहीं बल्कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। यहीं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रेरणा भी रही है।

शब्द संकेत– सनातन, समावेशी, प्रचारक, तरुणाई, अनाचार, आत्मनिर्भर, स्वयंसेवक, रंगभूमि, उपवास, पतित, स्नेहशीलता, मौनसाधना।

शोध–पत्र

पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता, भारतीय जनसंघ के महान नेता एवं एक राष्ट्र नायक के रूप में वह एक चिन्तक, पत्रकार एवं लेखक के रूप में अपनी पहचान रखते हैं। वह भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष के साथ–साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठनकर्ता के रूप में उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युग के अनुकूल स्वरूप देने का प्रयास किया था। वह एक ऐसे सशक्त भारत का निर्माण चाहते थे जो समावेशी विचारधारा का समर्थक हो। 1937 में वह सर्वप्रथम अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़कर निरन्तर संघ के प्रचारक के रूप में समर्पित रहे। डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी ने पं. जी के विषय में कहा था कि ''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जायें, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रथम संघ प्रमुख डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार 1925–1930 तक संघ चालक के रूप में इसे प्रतिष्ठित करने का कार्य किया। संघ एक विकासशील संगठन के साथ–साथ विधिक एवं परम्पराओं का भी निर्वहन किया जाता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक ऐसा संगठन रहा है जो अनुशासित युवकों से युक्त है। इस संगठन में कार्यकर्ता बनने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है, जो तीन वर्ष तक कठिन प्रशिक्षण प्राप्त करके ही बना जा सकता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 1939 में प्रथम और 1942 में द्वितीय दो बार इस प्रशिक्षण को प्राप्त कर एक कुशल एवं सच्चे स्वातन्त्र्य अधिकारी के रूप में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन किया था। वह संघ के आजीवन प्रचारक रहे। उन्होंने उत्तर प्रदेश राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में 1942 से 1951 तक 'जीवन–व्रती' के रूप में इस दायित्व को सम्भाला था। उनके इस कार्य से उनका परिवार बहुत प्रसन्न नहीं था। वह प्रशासनिक परीक्षा पास करने के पश्चात् भी नौकरी करना पसन्द नहीं किया। शिक्षा से लगाव के कारण वह कानपुर से बी.टी. का प्रशिक्षण लिया

था। लेकिन उनका वास्तविक लगाव तो संघ सेवा में थी। उन्होंने गृह त्याग कर सन्यासी के समान स्वयंसेवक संघ के जीवनव्रती प्रचारक के रूप में अपने आपको समर्पित कर दिया था।[1]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ राष्ट्र निर्माण में भी संगठन के साथ–साथ विचारधारा के स्तर पर राष्ट्रवाद एवं भारतीय अस्मिता को स्थापित करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। वह जनसंघ के साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में उनकी सेवाओं के कारण ऐसा मंच स्थापित किया जो इतिहास में राष्ट्र को गौरवशाली पहचान दिलाया।

विद्यार्थी संघ के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयं सेवक के रूप में दीनदयाल जी भाऊ राव जी के निकट अपनी पहचान स्थापित करने के पश्चात् कार्य के उत्साह में भाऊ राव जी के मार्गदर्शन से उनकी गतिशीलता में अतिवृद्धि के साथ निरतन्तर उत्साह बढ़ता रहा। भाऊराव जी से घनिष्ठता के बीच में हीउनके भीतर स्वयं सेवक के पूर्णकालिक बनने की चाह और पुष्ट हो चली। ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्ग में शिक्षार्थी के रूप में पं. दीनदयाल उपाध्याय नागपुर की शाखा में उपस्थित हुए। परमपूजनीय डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार जी के दर्शन लाभ के साथ शाखा में उपस्थित अन्य स्वयंसेवकों के बीच प्राप्त सान्निध्य उनके भीतर संवेदनशीलता की तरुणाई के अन्तःकरण को पूर्ण रूप से राष्ट्र कार्य हेतु आजीवन समर्पित करने का निश्चय कर लिया। एक शिक्षार्थी स्वयंसेवक के रूप में उन्होंने संघ की बैठकों, अनेक प्रश्नों के माध्यम से अपने आपको तृप्त किया। इसी अवधि में उन्होंने मराठी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त किया। संघ के प्रति उनकी निष्ठा पर कोई प्रश्नचिह्न लगा सकता है। उनके स्वयं के कथनानुसार– ''हम पहले स्वयंसेवक हैं और कुछ बाद में। जब भी संघ द्वारा कोई आह्वान किया जाता है तो हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि अन्य सभी बातों को एक ओर फेंककर संघ की पुकार पर चलें।''[2]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने कई ऐसे महान राष्ट्रनायक दिये जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की दशा एवं दिशा तय करने में अपनी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। वह राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान के साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने विचारों एवं कार्यों के क्रियान्वयन से राष्ट्र निर्माण में अपने योगदान को सिद्ध किया है, लेकिन दुर्भाग्यवश इस देश के इतिहास में वह स्थान नहीं प्राप्त कर सके हैं जिनके वह अधिकारी थे। ऐसे ही नायकों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का भी नाम सर्वप्रमुख है। प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह अपनी स्वतन्त्रता की रखा करे तथा उसे और शक्तिशाली बनाने का भी प्रयास करे, ताकि जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए समृद्ध, उद्देश्यपूर्ण एवं सुखी समाज की संगठनात्मक व्यवस्था सचेष्ट रह सके। इस देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जनमानस में यह सहज आकांक्षा जागृत हुई जिसकी अपेक्षा गुलामी के दिनों से ही की जा रही थी। वास्तव में संघर्षशील राष्ट्र अब अपने स्वाभाविक स्वरूप एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अपने देश, राज्य, जनपद एवं गाँव घर का पुनर्निर्माण कर सकता है। रूढ़िवादी परम्परा समाप्त होकर नवजागृति स्वस्थ चेतनामयी संस्थाएं जन्म लेंगी जिससे आर्थिक एवं सामाजिक दुर्व्यवस्था को समाप्त कर सम्पूर्ण जनमानस सम्पन्नता और समानता के वातावरण में स्वच्छन्द रूप से सन्तोष की साँस ले सकेगा। किन्तु ऐसा हो न सका। स्वतन्त्रता के पश्चात् योजनाओं एवं उद्घोषों के पश्चात् भी जन–समुदाय के आकांक्षाओं की पूर्ति कहो न सकी। अव्यवस्था, अनाचार, अभाव, गरीबी, बेरोजगारी, असुरक्षा एवं असामाजिकता में पूर्व की अपेक्षा अधिक वृद्धि व्यापक रूप से बढ़ी।[3]

पं. दीनदयाल उपाध्याय का भारत के उत्थान में बड़ा योगदान रहा हे। वह मजबूत, जीवन्त एवं आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने के लिए इस देश की संस्कृति, सभ्यता एवं राष्ट्रवादी मूल्यों के आधार पर स्वदेशी आर्थिक पॉलिसी अपनाने के लिए विशेष रूप से बल दिया था, जिसे हम एकात्म मानववाद के नाम से जानते हैं। यह न तो पूँजीवाद और न ही समाजवाद कहा जा सकता है बल्कि

इस पॉलिसी को पूर्ण रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल मॉडल के रूप में देखा जा सकता है। वह हमेशा सकारात्मक विचारों से समाज की दिशा को गतिशीलता प्रदान करने के पक्ष में रहे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विषय में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का कथन है कि ''हम लोग अपने लिए जो स्वयंसेवक संघ शब्द का प्रयोग करते हैं वह न तो थोड़ी देर के लिए है, न बिना पैसे काम करने के लिए है और न अनुमति लिए बिना कहीं घुस जाने के लिए ही है। यह सब स्वयंसेवक के लिए बनी हुई छोटी व्यवस्था है। हम तो बड़ी व्यवस्था करने के लिए स्वयंसेवक बने हैं। बहुत बड़ी व्यवस्था करना बहुत बड़ा कार्य है। उसी को सम्पन्न करने के लिए ही हम स्वयंसेवक बने हैं। हमें अपने समाज का संगठन करना है। अपना समाज जिस चीज को लेकर उत्पन्न हुआ है। उसी ध्येय को उसी तत्त्व को हमें सम्पूर्ण मानव जाति तक पहुँचाना है।''[4]

वैश्विक ज्ञान हमारी थाती है। मानव जाति हमारी सम्पत्ति के रूप में रही है। विज्ञान पर दुनिया के सभी देशों का अधिकार होता है। वह हमारी भी अभ्युदय का साधन बन सकता है। किन्तु भारत धर्म एवं संस्कृति में एक रंगभूमि की तरह है। इस देश का जनमानस हजारों–हजार बार पात्र ही नहीं बल्कि दाता के रूप में भी है। जिसके मानसिक सुख के लिए हमें भी अपनी भूमिकाओं का निर्धारण करना होगा। वैश्विक प्रगति का मात्र हम द्रष्टा ही नहीं उसके साधक भी हैं। अतः जिस प्रकार हमारी दृष्टि वैश्विक प्रगति पर होनी चाहिए, उसी प्रकार हमें अपने राष्ट्र की मूल प्रकृति प्रतिभा एवं अपनी प्रवृत्तियों को पहचान कर अपनी परम्परा एवं परिस्थितियों के अनुकूल भविष्य के विकास क्रम के निर्धारण की भी अनिवार्यता को नहीं भूलना चाहिए। 'स्व' के हस्ताक्षर या साक्षात्कार के बिना न तो स्वतन्त्रता ही सार्थक हो सकती है और न ही वह कर्मचेतना ही जागृत हो सकती है, जिसमें परावलम्बन के साथ–साथ पराभूति का भाव न होकर स्वाधीनता, स्वच्छता एवं स्वानुभूति जन सुख की प्राप्ति हो सके। अज्ञान, अभाव तथा अन्याय की परिसमाप्ति और सुदृढ़, समृद्ध, सुसंस्कृति तथा सुखी राष्ट्र जीवन का आरम्भ सभी के द्वारा स्वेच्छा के साथ किये जाने वाले कठोर परिश्रम तथा सहयोग पर निर्भर है। यह महान कार्य राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नवीन नेतृत्व की अपेक्षा रखता है। भारतीय जनसंघ का जन्म इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए ही हुआ हो ऐसा माना जाता है।[5]

धर्म के मूलभूत तत्त्व सनातन एवं सर्वव्यापी है। हाँ उनका व्यवहार देश, काल एवं परिस्थिति सापेक्ष होता है। मनुष्य को शरीर धारण करने के लिए भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। यह नियम शाश्वत है, किन्तु व्यक्ति विशेष को कब, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए। यह भी परिस्थिति सापेक्ष होगा। कभी–कभी ऐसा भी हो सकता है कि भोजन ही नहीं करना चाहिए। भोजन का भी नियम होना ही चाहिए। उपवास भी व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार धर्म के जो नियम हैं, उनका व्यवहार, समय के साथ, युग के साथ परिवर्तित होता है। इसीलिए देश–काल के आधार पर इन नियमों का पालन अवश्य होना चाहिए।[6]

पं. दीनदयाल मानते हैं कि 'हमारे पतन का कारण हममें संगठन की कमी है। बाकी बुराइयाँ, अशिक्षा आदि तो पतित अवस्था के लक्षण मात्र हैं। व्यक्तिगत नाम एवं कीर्ति की बात तो यह स्पष्ट है कि गुलामी की कैसी कीर्ति और कैसा नाम। जिस समाज और धर्म की रक्षा के लिए भगवान राम ने वनवास का मार्ग चुना, कृष्ण ने अनेकों कष्ट उठाये, राणा प्रताप जंगलों में जीवन गुजारा, शिवाजी ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। गुरु गोविन्द के छोटे–छोटे बच्चे दीवारों में जिन्दा चुनवा दिये गये थे क्या उनके लिए हम अपने जीवन की आकांक्षाओं का झूठी आकांक्षाों का त्याग भी नहीं किया जा सकता। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में कार्यकर्ता निर्माण का महत्त्वपूर्ण साधन है, 'संघ शिक्षा वर्ग'। इन वर्गों में दीनदयाल उपाध्याय स्वयंसेवकों की वैचारिक शिक्षा के लिए देशभर में भ्रमण कर प्रवास करते हैं। भारतीय जनसंघ में जाने के बाद भी उनका यह क्रम अनवरत चलता रहा। उत्तर प्रदेश में इन वर्गों की परम्परा प्रारम्भ करने में भाऊराव देवरस, दीनदयाल उपाध्याय और नानाजी देशमुख की भूमिका बड़ी

सरलता एवं स्नेहशीलता के कारण अधिक लोकप्रिय थे। दीनदयाल उपाध्याय की कार्य पद्धति मौन साधना व प्रसिद्धि आदि थी। उन्होंने संगठन के कार्य हेतु संघ विचार एवं लोकशिक्षण के लिए साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रारम्भ की थीं। संघ में सामान्य रूप में शिक्षार्थी ही आया करते थे। ऐतिहासिक पात्रों के ललित साहित्य के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विचार को सम्प्रेषित करने के लिए इसी काल में दो महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों 'सम्राट चन्द्रगुप्त' एवं जगद्गुरु शंकराचार्य का प्रणयन किया था।[7]

सन्दर्भ सूची–

1. शर्मा, महेशचन्द्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण विभाग, भारत सरकार, पृ. 10
2. धामा, तेजपाल सिंह, पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, विनोद बुक हाउस, दिल्ली, पृ. 25
3. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद तत्त्व मीमांसा सिद्धान्त विवेचन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 45
4. धामा, तेजपाल सिंह, पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, विनोद बुक हाउस, दिल्ली, पृ. 25
5. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद, तत्त्व मीमांसा सिद्धान्त विवेचन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 47
6. वही, पृ. 106
7. शर्मा, महेशचन्द्र, पं. दीनदयाल उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण विभाग, भारत सरकार, पृ. 14